भारतीय संस्कृति में जैनधर्म

प्रो. कृष्णदत्त वाजपेयी

भारत का प्राचीन इतिहास समन्वयात्मक भावना से ओतप्रोत था। इस देश में अनेक भौगोलिक, जनपदीय विभिन्नताओं के होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से यह देश एक था। इस संश्लिष्ट संस्कृति के निर्माण में भारतीय धार्मिक-सामाजिक प्रणेताओं तथा आचार्यों का प्रभूत योगदान रहा है।

हमारे मनीषी संस्कृति-निर्माताओं ने देश के विभिन्न भागों में विचरण कर सच्चे जीवन-दर्शन का संदेश फैलाया। धीरे-धीरे भारत और उसके बाहर अनेक संस्कृति-केन्द्रों की स्थापना हुई। इन केन्द्रों पर समय-समय पर विभिन्न मतावलम्बी लोग मिलकर विचार-विमर्श करते थे। सांस्कृतिक विकास में इन केन्द्रों का बड़ा योगदान था। भारत में तक्षशिला, मथुरा, वाराणसी, नालन्दा, विदिशा, विक्रमशिला, देवगढ़, वलभी, प्रतिष्ठान, कांची, श्रवणवेलगोल आदि अनेक सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित हुए।

ईसा से कई शताब्दी पूर्व मथुरा में एक बड़े जैन स्तूप का निर्माण हुआ। जिस भूमि पर वह स्तूप बनाया गया वह अब 'कंकाली टीला' कहलाता है। इस टीले के एक बड़े भाग की खुदाई पिछली शताब्दी के अन्तिम भाग में हुई थी, जिसके फलस्वरूप एक हजार से ऊपर विविध पाषाण मूर्तियाँ मिलीं। हिन्दू और बौद्ध धर्म-सम्बन्धी कुछ इनी-गिनी मूर्तियों को छोड़कर इस खुदाई में प्राप्त शेष सभी मूर्तियाँ जैन धर्म से सम्बन्धित हैं। उनके निर्माण का समय ई. पू. प्रथम शती से लेकर ११०० ई. तक है। कंकाली टीला तथा ब्रज क्षेत्र के अन्य स्थानों से प्राप्त बहुसंख्यक जैन मन्दिरों एवं मूर्तियों के अवशेष इस बात के सूचक हैं कि वहाँ एक लम्बे समय तक जैन धर्म का विकास होता रहा।

बौद्धों ने भी मथुरा में अपने कई केन्द्र बनाये, जिनमें चार मुख्य थे—सबसे बड़ा केन्द्र उस स्थान के आस-पास था, जहाँ आजकल कलक्टरी कचहरी है। दूसरा शहर के उत्तर में यमुना किनारे गौकर्णेश्वर और उसके उत्तर की भूमि पर था। तीसरा यमुना तट पर, ध्रुवघाट के आस-पास था। चौथा केन्द्र श्रीकृष्ण जन्मस्थान के पास गोविन्दनगर क्षेत्र में था। हाल में वहाँ से बहुसंख्यक कलाकृतियों तथा अभिलेखों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्ति हुई है, जो राज्य संग्रहालय मथुरा में सुरक्षित हैं। अनेक हिन्दू देवताओं की प्रतिमाओं की तरह भगवान् बुद्ध की मूर्ति का निर्माण सबसे पहले मथुरा में हुआ। भारत के प्रमुख चार धर्म—भागवत्, शैव, जैन तथा बौद्ध—ब्रज की पावन भूमि पर शताब्दियों तक साथ-साथ पल्लवित-पुष्पित होते रहे। उनके बीच ऐक्य के अनेक सूत्रों का प्रादुर्भाव ललित कलाओं के माध्यम से हुआ, जिससे समन्वय तथा सहिष्णुता की भावनाओं में वृद्धि हुई। इन चारों धर्मों के केन्द्र प्रायः एक-दूसरे के समीप थे। बिना पारस्परिक द्वेषभाव के वे कार्य करते रहे।

भारत का एक प्रमुख धार्मिक कला का केन्द्र होने के नाते मथुरा को प्राचीन सभ्य संसार में बड़ी ख्याति प्राप्त हुई। ईरान, यूनान और मध्य एशिया के साथ मथुरा का सांस्कृतिक सम्पर्क बहुत समय तक रहा। उत्तर-पश्चिम में गंधार प्रदेश की राजधानी तक्षशिला की तरह मथुरा नगर विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक मिलन का एक बड़ा केन्द्र बना। इसके फलस्वरूप विदेशी कला की अनेक विशेषताओं को यहाँ के कलाकारों ने ग्रहण किया और उन्हें देशी तत्त्वों के साथ समन्वित करने में कुशलता का परिचय दिया। तत्कालीन एशिया तथा यूरोप की संस्कृति के अनेक उपादानों को आत्मसात् कर उन्हें भारतीय तत्त्वों के साथ एकरस कर दिया गया। शकों तथा कुषाणों के शासनकाल में मथुरा में जिस मूर्तिकला का बहुमुखी विकास हुआ उसमें समन्वय की यह भावना स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है।

वैदिक पौराणिक धर्म के विकास को जानने तथा विशेष रूप से स्मार्त-पौराणिक देवी-देवताओं के मूर्तिविज्ञान को समझने के लिए ब्रज की कला में बड़ी सामग्री उपलब्ध है। ब्रह्मा, शिव, वासुदेव, विष्णु, देवी आदि की अनेक मूर्तियाँ ब्रज में मिली हैं, जिनका समय ईस्वी प्रथम शती से लेकर बारहवीं शती तक है। विष्णु की कई गुप्तकालीन प्रतिमाएँ अत्यन्त कलापूर्ण हैं। कृष्ण, बलराम की भी कई प्राचीन मूर्तियाँ मिली हैं। बलराम की सबसे पुरानी मूर्ति ई. पूर्व दूसरी शती की है, जिसमें वे हल और मूसल धारण किये दिखाये गये हैं। अन्य हिन्दू देवता जिनकी मूर्तियाँ मथुरा कला में मिली हैं, कार्तिकेय, गणेश, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, कामदेव, हनुमान आदि हैं। देवियों में लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, महिषमर्दिनी, सिंहवाहिनी, दुर्गा, सप्तमातृका, वसुधारा, गंगा-यमुना आदि के मूर्तरूप मिले हैं। शिव तथा पार्वती के समन्वित रूप अर्धनारीश्वर की भी कई प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।

ब्रज में प्राप्त जैन अवशेषों को तीन मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—तीर्थंकर प्रतिमाएँ, देवियों की मूर्तियाँ और आयागपट्ट। चौबीस तीर्थंकरों में से अधिकांश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की मूर्तियाँ ब्रज की कला में उपलब्ध हैं। नेमिनाथ की यक्षिणी अम्बिका तथा ऋषभनाथ की यक्षिणी चक्रेश्वरी की मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं। आयागपट्ट प्रायः वर्गाकार शिलापट्ट होते थे, जो पूजा में प्रयुक्त होते थे। उन पर तीर्थंकर, स्तूप, स्वस्तिक, नंद्यावर्त आदि पूजनीय चिह्न उत्कीर्ण किये जाते थे। मथुरा संग्रहालय में एक सुन्दर आयागपट्ट है जिसे उस पर लिखे हुए लेख के अनुसार लवणसोभिका नामक एक गणिका की पुत्री वसु ने बनवाया था। इस आयागपट्ट पर एक विशाल स्तूप का अंकन है तथा वेदिकाओं सहित तोरणद्वार बना है। मथुरा कला के कई उत्कृष्ट आयागपट्ट लखनऊ संग्रहालय में है। रंगवल्ली का प्रारम्भिक सज्जा-अलंकरण इन आयागपट्टों में दर्शनीय है।

मथुरा के समान भारत का एक बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र विदिशा-साँची क्षेत्र था। वहाँ वैदिक-पौराणिक, जैन तथा बौद्ध धर्म साथ-साथ शताब्दियों तक विकसित होते रहे। विदिशा के समीप दुर्जनपुर नामक स्थान से कुछ समय पूर्व में तीन अभिलिखित तीर्थंकर प्रतिमाएँ मिली हैं। उन पर लिखे हुए ब्राह्मी लेखों से ज्ञात हुआ है कि ई. चौथी शती के अन्त में इस स्थल पर वैष्णव धर्मानुयायी गुप्त वंश के शासक रामगुप्त ने कलापूर्ण तीर्थंकर प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना करायी। सम्भवतः कुल प्रतिमाओं की संख्या चौबीस थी। विदिशा नगर के निकट एक ओर उदयगिरि की पहाड़ी में वैष्णव धर्म का केन्द्र था, दूसरी ओर पास ही साँची में बौद्ध केन्द्र था। जैन-धर्म के समता-भाव का इस समस्त क्षेत्र में प्रभाव पड़ा। बिना किसी द्वेष के सभी धर्म यहाँ संवर्द्धित होते रहे।

इस प्रकार के उदाहरण कौशाम्बी, देवगढ़, (जिला ललितपुर, उ. प्र.) खजुराहो, मल्हार (जिला विलासपुर म. प्र.), एलोरा आदि में मिले हैं। दक्षिण भारत में वनवासी, काँची, मूडबिद्री, धर्मस्थल, कारकल आदि ऐसे बहुसंख्यक स्थानों में विभिन्न धर्मों के जो स्मारक विद्यमान हैं उनसे इस बात का पता चलता है कि समवाय तथा सहिष्णुता को हमारी विकासशील संस्कृति में प्रमुखता दी गयी थी।

विभिन्न धर्मों के आचार्यों ने समवाय भावना को विकसित तथा प्रचारित करने में उल्लेखनीय कार्य किए। जैन-धर्म में आचार्य कालक, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, हेमचन्द्र, देवकीर्ति आदि ने इस दिशा में बड़े सफल प्रयत्न किए। जनसाधारण में ही नहीं, समुद्र-व्यवसायी वर्ग तथा राजवर्ग में इन तथा अन्य आचार्यों का प्रभूत प्रभाव था। पारस्परिक विवादों को दूर करने तथा राष्ट्रीय भावना के विकास में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके कार्य सदा स्मरणीय रहेंगे। जैन धर्माचार्यों ने दक्षिण भारत के दो प्रसिद्ध राजवंशों—राष्ट्रकूट तथा गंग वंश—के तीव्र विवादों को दूर कर उनमें मेल कराया। अनेक आचार्य मार्ग की कठिनाइयों की परवाह न कर दूर देशों में जाते थे। कालकाचार्य, कुमारजीव, दीपंकर, अतिशा आदि के उदाहरण हमारे सामने हैं। पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया, चीन, तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों में इन विद्वानों ने भारतीय संस्कृति का संदेश फैलाने में बड़ा कार्य किया। उनका सन्देश समस्त जीवों के कल्याण हेतु था। दीपंकर के बारे में प्रसिद्ध है कि जब उन्हें ज्ञात हुआ कि भारत पर विदेशी आक्रमणों की घटा उमड़नेवाली है तब वे तिब्बत को (जहाँ वे उस समय थे) छोड़कर भारत आये। यहाँ वे बंगाल के पाल शासक नयपाल से मिले और फिर कलुचरि-शासक लक्ष्मीकर्ण के पास गए। इन दोनों प्रमुख भारतीय शासकों को उन्होंने समझाया कि आपसी झगड़े भूलकर दोनों शासक शत्रु का पूरी तरह मुकाबला करें, जिससे देश पर विदेशी अधिकार न होने पाये। इस यात्रा में आचार्य दीपंकर को लम्बे मार्ग की अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परन्तु राष्ट्र-हित के सामने ये सब कष्ट उनके लिए नगण्य थे।

श्रवणबेलगोल के लेखों से ज्ञात हुआ है कि वहाँ विभिन्न कालों में अनेक प्रसिद्ध विद्वान् थे। ये विद्वान् जैन-शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य धर्मों के शास्त्रों में भी प्रवीण थे। अन्य धर्माचार्यों के साथ उनके शास्त्रार्थ होते थे, परन्तु वे कटुता और द्वेष की भावना से न होकर बौद्धिक स्तर के होते थे।

गुप्त-युग के पश्चात् भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव अत्यन्त सीमित क्षेत्र पर रह गया। इसमें पूर्वी भारत तथा दक्षिण कौशल एवं उड़ीसा के ही कुछ भाग थे। दूसरी ओर जैन-धर्म का व्यापक प्रसार प्रायः सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। इधर वैष्णवों, शैवों ने अपने धर्मों में अन्य विचारधाराओं के कल्याणकारी तत्त्वों को अन्तर्भुक्त कर उदा ता का परिचय दिया। मध्यकाल में उत्तर तथा दक्षिण भारत में वैष्णव तथा शैव धर्मों का प्रचार बहुत बढ़ा। जैन-धर्मावलम्बियों ने उनके उदार दृष्टिकोण के संवर्धन में योग दिया। जैनाचार्यों ने अपने धर्म के अनेक कल्याणप्रद तत्त्वों को उन धर्मों में समन्वित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया।

यहाँ यह बात विचारणीय है कि भारतीय इतिहास के मध्यकाल में अनेक राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन हुए। अब वैदिक-पौराणिक धर्म ने एक नया रूप ग्रहण किया। पशु बलि वाले यज्ञ तथा तत्संबंधी जटिल क्रिया-कलाप प्रायः समाप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर दिये गये। नये स्मार्त धर्म ने देश-काल के अनुरूप धर्म-दर्शन के नये आयाम स्थापित किये। जैनधर्म के अहिंसा तथा समता भाव ने इन आयामों के निर्माण को प्रोत्साहन दिया। वर्णाश्रम, संस्कार, प्रशासन, अर्थनीति आदि की तत्कालीन व्यवस्था का जैन धर्म ने विरोध नहीं किया, अन्यथा अनेक सामाजिक जटिलताएँ उपस्थित होतीं। जैन शासकों, व्यापारियों तथा अन्य जैन धर्मावलंबियों ने उन सभी कल्याण-कारी परिवर्तनों को प्रेरणा दी तथा उनका निर्माण पूरा कराया जो राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायक थे। भारत की व्यापक सार्वजनीन संस्कृति के निर्माण में जैन धर्म का निस्संदेह असाधारण योगदान है।

पद्माकर नगर,
सागर, मध्यप्रदेश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org